राजस्थान के जोहड़ (जल संरक्षण व्यवस्था) एक मिसाल का अध्ययन

भारत की जल संरक्षण व्यवस्थाओं को पुनर्जीवित किया जाना

राजस्थान का अलवर जिला एक आधा-सूखा इलाका है, जहाँ 620 मिमी की मामूली औसत वार्षिक वर्षा होती है। इस क्षेत्र में सूखे लगातार पड़ते रहते हैं। 1980 के दशक की शुरूआत में जनसंख्या दबावों के बढ़ने, खपत के बढ़ने, और वातावरण के स्तर में कुल मिलाकर आई गिरावट के कारण, पानी की स्थिति और खराब हो गयी। इस जिले को राजस्थान सरकार द्वारा आधिकारिक तौर पर "डार्क ज़ोन (अंधेरा इलाका)" घोषित किया है, अर्थात ऐसा क्षेत्र जहां भूजल स्तर उस सीमा के नीचे पहुंच गया हो कि उसका पुनर्भरण नहीं किया जा सकता।

1985-86 में, इस क्षेत्र में भयंकर सूखा पड़ा, और पहले से ही खराब स्थिति और बिगड़ गयी। इस चिंताजनक परिदृश्य में तरुण भारत संघ (टीबीएस) नामक स्वयंसेवी गैर सरकारी संगठन के समर्पित स्वयंसेवियों का एक समूह दाखिल हुआ। टीबीएस कार्यकर्ताओं को यह यकीन था कि स्थिति को सुधारने का एक तरीका होगा पारंपरिक व्यवस्थाओं को पुनर्जीवित करना, खासतौर पर जोहड़ (जल संग्रहण के लिये बनाया जाने वाला मिट्टी का बंद या रोधक बांध), जिसने अतीत में अलवर और उसकी जनता का पोषण किया था। पर ग्रामीणों के साथ बातचीत शुरू करना और उन्हें इस पुनरुत्थान का हिस्सा बनने के लिये राज़ी करना आसान काम नहीं था। उन्होंने निर्णय लिया कि प्रवचन देने से बेहतर होगा लोगों को यह करके दिखाना। उन्होंने गोपालपुरा गांव में पहले से ही मौजूद एक जोहड़ का पुनरोद्धार करने के लिये खुद ही उसे खोदना शुरू कर दिया।

कड़ी मेहनत और धैर्य से सफलता मिली। ग्रामीणों ने चर्चाओं में भाग लेना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे वे इस कार्य से जुड़ी प्रक्रियाओं में भी शामिल होने लगे। टीबीएस कार्यकर्ताओं ने समुदाय में प्रतिबद्धता और सक्रियता की भावना भर दी। अपने आंदोलन को पूरे क्षेत्र में फैलाने के लिये टीबीएस ने पानी यात्राओं का आयोजन किया। हर वर्ष तकरीबन डेढ़ महीने की इन यात्राओं में विस्तृत दौरे होते जिसमें लोगों को जल संरक्षण के अनुभवों से अवगत कराया जाता। इस अभियान में लोगों को पारंपरिक व्यवस्थाओं और ज्ञान के द्वारा वर्षाजल संग्रहण करने और वनों को बचाने का संदेश दिया गया। आज, यहां 4000 से भी ज्यादा जोहड़ हैं, जिनका रखरखाव पूरी तरह से इन ग्रामीण समुदायों के ऊपर ही निर्भर है और इन्हें सामुदायिक या ग्रामीण संपदा के तौर पर ही देखा जाने लगा है। कई मामलों में, ग्रामीणों ने कुल लागत में लगभग 90 फीसदी योगदान दिया है। टीबीएस की भूमिका एक उत्प्रेरक और अभिप्रेरक की रही है।

जोहड़ों को बनाकर लाया गया बदलाव साफ दिखाई देता है, और यह किसी चमत्कार से कम नहीं है। कुओं का पुनर्भरण हुआ है, और लोगों तथा पशुओं की जरूरतों के लिये लगने वाले पानी की आपूर्ति वर्षभर के लिये सुनिश्चित की जा सकती है। इसके अलावा, इसके परिणामस्वरूप खाद्य उत्पादन बढ़ा है, मृदा संरक्षण हुआ है और जैव ईंधन की उत्पादकता भी बढ़ी है। इन प्रयासों से दो नदियां भी पुनर्जीवित हो गयी हैं – अरावरी और रूपारेल। एक समय सदानीरा रही ये नदियां 1980 के दशक में पड़े सूखे के दौरान विलुप्त हो गयी थीं। छिटपुट रूप से खेती किये जाने

वाले क्षेत्रों में अब काफी सघन फसलोत्पादन किया जाता है। इन प्रयासों से आये रूपांतरण ने इस आधिकारिक तौर पर घोषित 'अंधेरे सूखे कोने' को 'जल-आधिक्य क्षेत्र' में बदल दिया है।

स्रोतः ममता पंड्या और मीना रघुनाथन टुवर्ड्स सस्टेनेबिलिटी – लर्निंग्ज़ फ्रॉम द पास्ट, इनोवेटिंग द फ्यूचर, (2002); पर्यावरण और वन मंत्रालय, नयी दिल्ली। फोटोग्राफ : फरहाद कॉन्ट्रैक्टर